गांधी, सांप्रदायिकता और विभाजन की पूर्व संध्या

डॉ. विक्रमसिंह अमरावत

भारत, लगभग एक सदी के संघर्ष के पश्चात ब्रिटिश साम्राज्यवाद की गुलामी से आजाद हुआ। किन्तु यह आजादी अपने साथ विभाजन की विभीषिका लेकर आई। भारत का विभाजन कोई अनायास हुई घटना नहीं थी, ना ही महज एक राजनीतिक फैसला विभाजन का कारण था। भारत का विभाजन एक राजनीतिक फैसला था किन्तु उसके मूल में सांप्रदायिकता की समस्या थी। आजादी के लिये संघर्ष के साथ-साथ भारत में जिस आंतरिक समस्या का प्रसार हो रहा था उसकी परिणति अंतत: विभाजन के साथ हुई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नेतृत्व ने इस समस्या को बहुत पहले से ही पहचान लिया था और बंगाल के प्रथम विभाजन के पश्चात से इस ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु अनेक-विध एवं अथक प्रयासों के पश्चात भी वो सफल नहीं हो पाए। इन प्रभावशाली नेताओं में महात्मा गांधी का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के पश्चात के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी नि:संदेह सबसे प्रमुख व्यक्ति के रूप में उभरे। गांधी ने प्रारम्भ से भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को बाह्य एवं आंतरिक स्तर पर चलाने के प्रयत्न किए। जहाँ एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिये संघर्ष किया वहीं दूसरी तरफ आंतरिक समस्याओं की पहचान कर उनके समाधान के लिये निरंतर प्रयास किए। आंतरिक समस्या के रूप में गांधी ने सांप्रदायिकता की पहचान बहुत पहले ही कर ली थी। अनेक प्रयासों के बावजूद भी इस समस्या का हल ना हो सका और यह विभाजन का कारण बनी। गांधी के लिये आजादी के साथ-साथ आंतरिक सामंजस्य भी उतना ही महत्वपूर्ण था। इसलिये जब एक तरफ देश आजादी की तैयारी कर रहा था वहीं दूसरी तरफ गांधी सांप्रदायिकता के समाधान के लिये अपना अभियान चला रहे थे। प्रस्तुत आलेख में सांप्रदायिकता की समस्या पर गांधी के विचारों की समीक्षा करते हुए विभाजन की पूर्व संध्या पर गांधी की गतिविधियों का विवेचन उक्त संदर्भ में किया जाएगा।

औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज की जो तस्वीर उभर कर आती है उसमें सांप्रदायिकता की लकीरें समय के साथ निरंतर गहरी होती हुई प्रतीत होती है। भारत के साम्राज्यवादी इतिहास लेखन का आधार भी यही बनाया गया और जेम्स मिल ने भारत के इतिहास के विभाजन को सांप्रदायिक आधार प्रदान किया। भारत में सांप्रदायिकता उपनिवेशवाद के दुष्परिणामों में से एक होने का दावा आधुनिक भारत के इतिहासकार बिपिन चंद्र करते हैं। उनके अनुसार 'सांप्रदायिकता भारतीय अर्थव्यवस्था के औपनिवेशिक चरित्र के लक्षणों में से एक और उपनिवेशवाद के फलस्वरूप अवरूद्ध विकास की परिणाम है।'[1] बिपिन चंद्र इसे वर्ग-संघर्ष का परिणाम भी बताते है और लिखते हैं कि, 'अलग-अलग धर्मों से संबद्ध वर्गों के संघर्ष ने सांप्रदायिक संघर्ष का रूप धारण कर लिया था या उसकी व्याख्या सांप्रदायिक संघर्ष के रूप में की जाती थी अथवा उसे सांप्रदायिक संघर्ष का रूप प्रदान कर दिया जाता था।'[2]

सूर्य प्रकाश उपाध्याय एवं रोएना रोबिन्सन ने अपने लेख 'रिविजिटिंग कम्युनलिज्म एंड फंडामेंटलिज्म इन इंडिया' में भारत में सांप्रदायिकता का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए औपनिवेशक शासन में उभरी सांप्रदायिकता को विभाजन का आधार बताया।[3] उन्नीसवीं सदी की शुरूआत में फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए जॉन गिलक्राईस्ट ने सबसे पहले भाषाई आधार पर धार्मिक विभेद को स्थापित किया।[4] उसके बाद से औपनिवेशिक शासन के द्वारा धार्मिक सांप्रदायिकता को स्थापित करने के लगातार प्रयास होते रहे। 1843 में लॉर्ड एलेनबरो ने **फूट डालो और शासन करो** की नीति की पैरवी करते हुए लंदन में अपने प्रशासनिक उच्चाधिकारियों को इस नीति की आवश्यकता के बारे में बताया था।[5]

1857 के संघर्ष के पश्चात धार्मिक सांप्रदायिकता ने गति पकड़ी और तीव्रता के साथ यह रोग फैलता गया। 1905 में बंगाल का विभाजन कर के तत्कालीन ब्रिटिश सत्ता ने भारत में सांप्रदायिकता को सरकारी मान्यता भी दी और उसे पोषित करने की अपनी छद्म नीति को अब पटल पर स्थापित कर दिया था। उसके बाद संवैधानिक सुधारों के नाम पर जिस तरह से सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की पैरवी की गई और उस पर अमल किया गया उससे लगातार सांप्रदायिकता का घाव और गहरा होता गया। राष्ट्रीय आंदोलन का भारतीय पक्ष इस सांप्रदायिकता के जाल में फंसने से

खुद को नहीं रोक पाया। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण 1924 के कोहाट सांप्रदायिक दंगों के पश्चात हुई गांधी और लाला लाजपतराय की चर्चा में देख सकते हैं।[6] जहाँ एक तरफ धार्मिक सांप्रदायिकता राष्ट्रीय आंदोलन के लक्ष्य के समक्ष चुनौती बन कर खड़ी थी वहीं दूसरी तरफ उसके हल के प्रयास भी लगातार किए जा रहे थे। इन सद्भाव के प्रयासों में गांधी ने भी अपनी तरह से योगदान दिया और उसके लिये निरंतर प्रयासरत रहे। राष्ट्रीय आंदोलन के शीर्ष नेतृत्व की सांप्रदायिकता को लेकर अपनी-अपनी समझ रही और उसी में गांधी ने भी धार्मिक विद्वेष को अपनी तरह से समझा, परिभाषित किया और उसी आधार पर अपनी कार्यवाहियों को निर्धारित किया। उन्होंने कभी भी इस समस्या से मुँह नहीं मोड़ा बल्कि उसे स्वीकार करते हुए उसके प्रति हमेशा मुखर रहे और उसे खुल कर संबोधित भी किया।

गांधी ने भी भारत में धार्मिक सांप्रदायिकता को औपनिवेशिक शासन का दुष्परिणाम बताया था। हिंद स्वराज में वो कहते हैं कि, 'आपको अंग्रेजों ने सिखाया है कि आप एक प्रजा नहीं थे, और एक प्रजा बनने के लिये सैंकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे तब हम एक प्रजा थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहाँ एक राज्य कायम किया। भेद तो बाद में उन्हीं ने पैदा किए।'[7] हिंद स्वराज में इस संदर्भ में उन्होंने खुल कर चर्चा की। दक्षिण अफ्रिका में मूलत: यह समस्या नहीं थी[8] किन्तु भारतीय परिस्थितियों को गांधी समझ रहे थे और दक्षिण अफ्रीका में होने के बावजूद भारतीय परिस्थितियों के बारे में चिंतनशील थे और उसे संबोधित कर रहे थे। भारत आने के बाद से तो लगातार इस विषय को उन्होंने मुखरता के साथ संबोधित किया। विभिन्न स्थलों पर दिये गए वक्तव्यों, पत्र-पत्रिकाओं में लेखों, पत्रकारों एवं अन्य से हुई चर्चाओँ और व्यक्तिगत पत्रों के माध्यम से हिन्दु-मुस्लिम, कौमी एकता, सांप्रदायिकता के संदर्भ में उन्होंने अपनी बात को रखा और उसके संदर्भ में समाधान को देने का भी प्रयास किया। अपने रचनात्मक कार्यक्रमों की सूची गांधी ने तैयार की उसमें कौमी-एकता को सबसे पहले रखा। कौमी एकता को महज एक राजनीतिक एकता तक सीमित नहीं करने पर जोर देते हुए वो कहते है कि, 'राजनीतिक एकता तो जोर-जबरदस्ती से भी लादी जा सकती है। मगर एकता या इत्तफाक के सच्चे मानी तो हैं वह दिली दोस्ती, जो किसी के तोड़े न टूटे।'[9] गांधी लगातार प्रयासरत रहे कि सांप्रदायिक समस्या आजादी की लड़ाई और उसके बाद एक बड़ी समस्या बन कर

सामने ना आए लेकिन उनके द्वारा किये गए प्रयास सफल नहीं हो पाए और अन्ततः विभाजन के रूप में इस समस्या का दुष्परिणाम हमारे सामने है।

गांधी के लिये यह समस्या महज राजनीतिक नहीं थी इसलिये विभाजन के निर्णय के पश्चात भी उनके लिये यह एक समस्या बनी रही और इसके समाधान के लिये निरंतर प्रयासरत रहे। आजादी के साथ विभाजन भी हुआ और तब गांधी के लिये आजादी का जश्न मनाने से ज्यादा महत्वपूर्ण काम सांप्रदायिक सद्भाव को बनाए रखना था। इसकी पुष्टि हम इससे भी कर सकते हैं कि जब पूरा देश एक लम्बे संघर्ष के पश्चात मिलने वाली आजादी के स्वागत का जश्न मना रहा था तब गांधी सांप्रदायिक सद्भाव की स्थापना के लिये उन क्षेत्रों के लिये निकल पड़े जहाँ पर सबसे ज्यादा सांप्रदायिक हिंसा हो रही थी। 22 जुलाई, 1947 को गांधी दिल्ली में थे, वहीं पर उनको एक पत्र मिलता है कि, 'अब तो स्वराज मिल गया है अब तो साबरमती आ जाईए। इस पर गांधी ने जवाब में लिखा था कि, पूर्ण स्वराज अभी दूर है, मेरे लिये साबरमती अभी दूर है और नौआखली नजदीक है।'[10] वास्तव में गांधी 15 अगस्त से कुछ दिन पहले ही नौआखली पहुँच जाना चाहते थे क्योंकि वहाँ के लोगों में बहुत घबराहट थी।[11] श्रीनगर के अपने प्रवास के दौरान उनको कुछ पत्र मिले थे जिनमें एक सवाल के जवाब में उन्होंने कहा था कि, 'हमें जो आजादी मिलने जा रही है वो रामराज्य के समान नहीं है। हम उससे आज भी उतने ही दूर हैं जितने कि पहले थे।'[12] ठीक इसी तरह की बात उन्होंने पटना में प्रार्थना सभा में कही थी कि, 'हमें जो स्वाधीनता मिलने जा रही है वह ऐसी नहीं है कि हम घर-घर रोशनी करें। आज हमारे पास अनाज, वस्त्र, घी अथवा तेल कहां हैं। तो फिर खुशियाँ मनाने की क्या जरूरत है?'[13]

इससे स्पष्ट होता है कि गांधी के लिये पूर्ण आजादी के मायने अलग थे और जब तक वो अपने मायने की आजादी को नहीं प्राप्त कर लेते तब तक वे उसके लिये प्रयासरत रहेंगे। 15 अगस्त 1947 को आजादी का दिन तय हुआ और इसके साथ ही 14 अगस्त 1947 को विभाजन का दिन भी तय हो गया था। जुलाई के अन्तिम दिन गांधी दिल्ली से निकल पड़े और पहले पश्चिम की तरफ गए जहाँ 1 अगस्त को रावलपिंडी, 2 से 4 अगस्त श्रीनगर, 5 अगस्त जम्मू, 6 अगस्त लाहौर और फिर लाहौर से सीधे पटना के लिये निकल पड़े। 8 अगस्त को पटना पहुँचे और वहाँ से नोआखली जाने के लिये 9 अगस्त को कलकत्ता पहुँचे।[14] कलकत्ता में जो स्थिति थी

उसकी वजह से वहाँ के लोगों ने गांधी को आगे नौआखली नहीं जाने दिया और जब तक कलकत्ता की स्थिति ठीक नहीं हो जाती, कहीं पर भी नहीं जाने दिया। गांधी भी वहीं रूक गए।

9 अगस्त से लेकर 6 सितंबर तक गांधी कलकत्ता ही रहे। 10 अगस्त को डॉ. जीवण देसाई को लिखे पत्र में उन्होंने नौआखली जाने की बात को कहा किन्तु उसी दिन कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग के मंत्री और कलकत्ता के भूतपूर्व मेयर मुहम्मद उस्मान एक बड़े शिष्टमंडल के साथ गांधी से मिलने के लिये आए और गांधी से कलकत्ता में ही रुक जाने का अनुरोध किया। गांधी ने उनसे कहा कि, 'मैं ठहरने के लिये तैयार हूँ, लेकिन तब आपको नौआखली में शांति स्थापित करने की गारंटी देनी होगी और यदि आपकी इस गारंटी के भरोसे मैं 15 तारीख से पहले नौआखली नहीं जाता और वहाँ स्थिति खराब हो जाती है तो मुझे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं रह जाएगा।'[15] 11 अगस्त को हसन शहीद सुहरावर्दी गांधी से मिलने के लिये आए और गांधी को तब तक कलकत्ता में रुकने के लिये कहा जब तक कि कलकत्ता में शांति स्थापित नहीं हो जाती। गांधी ने इस पर सुहरावर्दी को कहा कि यदि वो कलकत्ता में शांति स्थापना के लिये मिलकर काम करेंगे तो मैं कलकत्ता में रुक सकता हूँ। इस प्रस्ताव को सुहरावर्दी ने स्वीकार कर लिया और गांधी एक लंबे समय तक के लिये कलकत्ता में रुक गए।[16] 13 अगस्त को ही हिन्दू प्रदर्शनकारियों ने गांधी से मुलाकात की और कहा कि 'जब हिन्दुओं के खिलाफ सीधी कार्यवाही की गई थी तब आप हमारी रक्षा के लिये नहीं आए और अब मुसलमानों के इलाकों में थोड़ा सा उपद्रव होने पर आप उनकी रक्षा के लिये आ गए हैं, हम नहीं चाहते कि आप यहाँ रहें।' इस पर गांधी ने कहा कि, 'आपको ये बात समझ में क्यों नहीं आती कि यह कदम उठाकर मैंने नौआखली में शान्ति स्थापित करने की सारी जिम्मेदारी शहीद सुहरावर्दी और उनके मित्र मियाँ गुलाम सरवर और अन्य लोग भी शामिल हैं – डाल दी है। यह कोई छोटी बात नहीं है।'[17] जैसे–जैसे विभाजन और आजादी का दिन नजदीक आ रहा था वैसे–वैसे गांधी के लिये नौआखली महत्वपूर्ण होता जा रहा था।

1946 में जिन्ना की सीधी कार्यवाही की घोषणा के पश्चात कलकत्ता में जो सांप्रदायिक दंगे भड़के, उनमें हिंदु बहुसंख्यक होने की वजह से अँतत: मुस्लिम अल्पसंख्यकों को भारी जन–धन की हानि उठानी पड़ी और नौआखली में कलकत्ता की इस जन–धन हानि का बदला लेने की कार्यवाही की गई थी।[18] यह कार्यवाही

इतनी भयंकर थी कि इससे पूर्व हुए किसी भी सांप्रदायिक दंगों में इस तरह का भीषण विनाश नहीं हुआ था। नौआखली में गांधी इससे पहले लगभग चार महीने रह चुके थे और वहां सांप्रदायिक सद्भाव का दुष्कर कार्य कर चुके थे। 1946 के नवंबर में नौआखली पहुँचे और मार्च 1947 के प्रथम सप्ताह तक नौआखली में रहे।[19] वहाँ पर उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव की स्थापना के जो प्रयास किये वो उनके लिये सर्वाधिक चुनौतिपूर्ण समय रहा था। संभवतया वहीं पर जाकर उनको यह महसूस हुआ कि सांप्रदायिकता की समस्या कितनी गंभीर है और आजादी को इसकी कीमत पर लेना कभी भी फायदे का सौदा नहीं हो सकता। नौआखली, विभाजन के पश्चात पूर्वी पाकिस्तान का हिस्सा होने वाला था। इसीलिये उनके लिये आजादी के जश्न को मनाने से अधिक महत्वपूर्ण बंगाल के उस इलाके में जाकर कार्य कौमी-एकता को स्थापित करना था जो सबसे अधिक संवेदनशील माना जा रहा था।

इसी उद्देश्य को लेकर वो दिल्ली से नौआखली के लिये निकल पड़े थे। नौआखली पूर्वी पाकिस्तान का हिस्सा बनने जा रहा था और वहाँ की हिंदु प्रजा के लिये कठिन समय की शुरूआत होने वाली थी। गांधी के लिये वहाँ पर सौहार्द्र कायम करना प्राथमिकता थी। किन्तु नौआखली पहुँचने से पूर्व ही कलकत्ता में उनको रोक लिया गया और वहाँ पर शांति स्थापना के लिये उनसे मदद मांगी गई। कलकत्ता में भी कौमी फसाद चरम पर था।

गांधी के लिये कलकत्ता में रह कर सांप्रदायिक सौहार्द्र के लिये काम करना आसान नहीं था। 13 अगस्त को ही सरदार पटेल को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि, 'मैं तो यहाँ फँस गया हूँ, और अब भारी खतरे का काम सिर पर ले रहा हूँ। सुहरावर्दी और मैं आज दंगे वाले मुहल्ले में साथ-साथ रहने जा रहे हैं। अब जो हो सो सही, देखते रहना।'[20] कनु गांधी को लिखे पत्र में भी गांधी लिखते हैं कि, 'मैं तो यहीं रह गया हूँ और अब तो मुसलमान मुहल्ले में एक मुसलमान के घर रह रहा हूँ। घर तो महल जैसा है। हम सब राम के अधीन हैं। वह जैसे रखे वैसे रहना है।'[21] बलवन्त सिंह को लिखे पत्र में भी लिखा कि, 'मैं तो यहां बड़े हुजूम में पड़ा हूँ। मेरी परीक्षा हो रही है। नौआखली अब तो छूट गया है।'[22] राधाकृष्ण बजाज को लिखे पत्र में लिखा कि, 'मैं तो यहाँ फंस गया हूँ। हो सो सही। राम रखेंगे वैसे रहेंगे।'[23] अमतुस्सलाम को लिखा कि, 'एक मुस्लिम घर में रहने आज आया हूँ। शहीद साहेब साथ में हैं। क्या होगा खुदा जानता है। मेरी परीक्षा होगी। अब तो कब तुझसे मिलूंगा, नहीं जानता

हूँ।'[24] 14 अगस्त को मारवाड़ी क्लब से भेंट के दौरान उन्होंने कहा था कि, 'कल हम अंग्रजों की गुलामी से मुक्त हो रहे हैं लेकिन आज रात को बारह बजे हिन्दुस्तान के टुकड़े हो रहे हैं इसलिये कल का दिन खुशी का भी है और गम का भी है।'[25] बेलियाघाट में आयोजित प्रार्थना-सभा में भी उन्होंने वही बात दोहराई कि, 'मैं आप सब से अनुरोध करूँगा कि कल के दिन आप समस्त भारत के कल्याण के लिये 24 घंटे का उपवास रखें और दिन में प्रार्थना करें तथा जहाँ तक हो सके यह दिन चरखा चलाने में बितायें। क्योंकि हाथ-कताई ही ऐसी चीज है जिसने अमीर और गरीब को एक साथ जोड़ा है और असंख्य बेरोजगार स्त्री-पुरूषों को रोजगार दिया है।'[26]

गांधी ने विभाजन को राजनीतिक निर्णय के रूप में भले स्वीकार कर लिया था किन्तु विभाजन की विभीषिका के प्रति हमेशा से वो आगाह करते आए थे।[27] जहाँ एक तरफ देश के लोगों और नेतृत्व के लिये आजादी का मिलना ही पूर्ण स्वराज की प्राप्ति था वहीं गांधी के लिये आजादी का मिलना लक्ष्य-प्राप्ति की लड़ाई का महज एक पड़ाव था जबकि इस प्रकार की आजादी ने उनके लक्ष्य का रास्ता और भी लम्बा कर दिया था। वे जिस आजादी की कल्पना कर रहे थे उससे कहीं अलग तरह की आजादी मिल रही थी और इसलिये वो अपने अभियान में पूर्ववत चल पड़े। आजादी और विभाजन की पूर्व संध्या उनके लिये एक कठिन संध्या थी। एक मंजिल मिलकर भी अधुरी रह गई और साथ में अनेक चुनौतियाँ लेकर आई। लेकिन उन्होंने उस चुनौती को न सिर्फ स्वीकार किया बल्कि उसके समाधान के लिये यथोचित प्रयत्नशील रहे। 13 तारीख के पत्रों में लिखे शब्दों से उस समय की उनकी स्थिति को समझा जा सकता है। जिस लक्ष्य को लेकर वो नौआखली के लिये निकले थे उस तक पहुँचने से पूर्व ही कलकत्ता में उनको रुकना पड़ा। किन्तु लगातार नौआखली की चिन्ता भी मन में बनी रही और उसके लिये उनके यत्न जारी रहे।

विभाजन से पूर्व ही गांधी ने सांप्रदायिकता की भीषणता की पहचान कर ली थी और उसके स्थाई समाधान के प्रयास उनकी तरफ से निरंतर जारी रहे। यद्यपि उनके प्रयासों पर कट्टरवादी हमेशा संशय करते रहे, सवाल खड़े करते रहे किन्तु गांधी ने अपने प्रयासों को, अपने प्रयोगों को अपने सिद्धान्तों के तराजू में तोल कर ही निर्णय किया और आगे बढ़े। उनका बहुत स्पष्ट मानना था कि अहिंसा, प्रेम और करूणा का रास्ता ही वो रास्ता है जो स्थाई हल निकाल सकता है जबकि द्वेष और हिंसा से जिस भी स्थिति की प्राप्ति होगी वो कदापि एक सकारात्मक और शांतिपूर्ण

समाज की स्थापना नहीं कर सकती।

सन्दर्भ :

1. बिपिनचंद्र, *आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता,* हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1997, पृ. 24
2. वही, पृ. 43
3. सूर्य प्रकाश उपाध्याय एवं रोएना रोबिन्सन, *रिविजिटिंग कम्युनलिज्म एंड फंडामेंटलिज्म इन इंडिया,* इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 8 सितंबर, 2012, वॉल्यूम–47, नं.–36, पृ. 36–38
4. जॉन गिलक्रीस्ट, *ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लेंग्वेज एंड पार्ट थर्ड ऑफ वॉल्यूम फर्स्ट फर्स्ट ऑफ ए सिस्टम ऑफ हिन्दुस्तानी फीलोलोजी,* कलकत्ता क्रॉनिकल प्रेस, 1796, पृ. 4
5. अब्दुल अजीम अख्तर, कम्युनलिज्म इन इंडिया: ए कोलोनियल लिगेसी, *सर्बियन स्टडीज रिसर्च,* वॉल्यूम–4, नं.–1, 2013, पृ. 196
6. विक्रमसिंह अमरावत, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सांप्रदायिकता के इतिहास लेखन का महत्वपूर्ण दस्तावेज: 1924 के कोहाट दंगों के बाद की गांधी एवं लाला लाजपतराय की बहस, *शोध सरिता,* वॉल्यूम–8, ईश्यू–29, जनवरी–मार्च– 2021, पृ. 272–276
7. गांधी, *हिंद स्वराज,* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1959, पृ. 31
8. धनंजय राय, *पूर्ण स्वराज,* पेन्गुईन हाऊस इंडिया, नई दिल्ली, 2023, पृ. 99
9. महात्मा गांधी, *रचनात्मक कार्यक्रम,* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2014, पृ. 11
10. *गांधीजीनी दिनवारी,* चंदुलाल भगुभाई दलाल (संपा.), माहिती खातुं गुजरात राज्य, गांधीनगर, 1990, पृ. 568
11. *गांधी वांग्मय,* खण्ड–89, पृ. 21
12. वही, पृ. 15
13. वही, पृ. 21
14. *गांधीजीनी दिनवारी,* पृ. 568

15. *गांधी वांग्मय*, खण्ड–89, पृ. 24–25
16. वही, पृ. 32
17. वही, पृ. 38–39
18. नारायण देसाई, *मारूं जीवन ए ज मारी वाणी*, चतुर्थ खंड- स्वार्पण, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2003, पृ. 227
19. *गांधीजीनी दिनवारी*, चंदुलाल भगुभाई दलाल (संपा.), माहिती खातुं गुजरात राज्य, गांधीनगर, 1990, पृ. 551–558
20. *गांधी वांग्मय*, खण्ड–89, पृ. 41
21. वही, पृ. 42
22. वही, पृ. 44
23. वही, पृ. 45
24. वही, पृ. –45
25. *गांधीजीनी दिनवारी*, पृ. 570
26. *गांधी वांग्मय*, खण्ड–89, पृ. 48
27. कोलिन्स लेरी एवं लेपियर डोमिनिक, *माउन्टबेटन एंड इन्डिपेन्डेन्ट इंडिया 16 अगस्त 1947– 18 जून 1948*, तारंग पेपरबेक, नई दिल्ली, 1985, प्रस्तावना, पृ.10

सहायक प्राध्यापक
इतिहास एवं संस्कृति विभाग
गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद